हरिशंकर परसाई के साहित्य में यथार्थवादी चेतना

प्रो. संगीता पाठक
हिन्दी विभाग, आईसेक्ट विश्वविद्यालय, रायसेन (म.प्र.) भारत

शोध सांराश
लगभग सम्पूर्ण साहित्य में परसाई जी का परिवेश व स्वय परसाई जी एक विषय के रूप में छाये दिखते हैं। परसाई का अधिकांश लेखन, आत्मकथात्मक माना जाता है। साहित्यकार परसाई के निर्माण में व्यक्ति परसाई की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। परसाई जी के व्यक्तित्व और साहित्य निर्माण में उनकी यथार्थ चेतना के योग की उपस्थिति आरम्भ से ही रही। देशकाल के संदर्भ में यदि हम परसाई के भीतर पल–बढ रहे सचेत और जाग्रत रचनाकार पर दृष्टि डालें तो पाऐंगे कि उस समय का देशकाल परिवेश संक्रमण के काल से गुजर रहा था। तत्कालीन परिस्थितियों में स्वतंत्रता की आकांक्षा और उसके बाद के मोहभंग में परसाई की यथार्थ चेतना और रचनाकार ने आकार लिया। पाँचवे–'छठे दशक की राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय घटनाएँ, परिवेश परसाई की दृष्टि का विकास कर रहे थे। इन सबके बीच विशद् अध्ययन और आसपास के सम्पर्क से परसाई जी का मार्क्सवाद के प्रति जो झुकाव उभरा तो वह सन् 1960 तक आते–आते पुख्ता हो गया। परसाई कहते हैं जो यथार्थ जिस रूप में इन्होंने पाया, उसे उसी रूप में ईमानदारी से साहित्य में प्रस्तुत कर दिया। किसी प्रकार की कोई बनावट नहीं, सजावट नहीं और न ही दुराव छिपाव। अच्छा–बुरा सब ये बेहद निस्संग होकर अपने साहित्य में शामिल करते हैं। सबसे खास बात ये कि इन सबके बीच ये पाठक के समक्ष किसी आदर्श या यूरोपिया का जाल भी नहीं बुनते।

I भूमिका

हरिशंकर परसाई के साहित्य में यथार्थ जीवन चेतना को समझने में परसाई जी के व्यक्तित्व की उपस्थिति को सहज ही देख पाते है। लगभग सम्पूर्ण साहित्य में परसाई जी का परिवेश व स्वयं परसाई जी एक विषय के रूप में छाये दिखते हैं। परसाई का अधिकांश लेखन, आत्मकथात्मक माना जाता है। परसाई जी के साहित्य का अध्ययन करें तो 'गर्दिश के दिन', 'पहली नौकरी की याद', 'नर्मदा मैया की जय', 'नूरजहाँः कुछ यादें', 'मुक्ति बोधः मेरे समकालीन' जैसी रचनाएँ तो प्रत्यक्षतः आत्मकथात्मक हैं ही, शेष रचनाओं में भी कहीं ना कहीं परसाई जी का विस्तार झलकता हैं।

साहित्यकार परसाई के निर्माण में व्यक्ति परसाई की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। अपनी रचनाओं में अपने जीवनानुभव की उपस्थिति को वे स्वंय 'गर्दिश के दिन' में स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं, "उस उम्र की गर्दिशों की अपनी अहमियत है। लेखक की मानसिकता और व्यक्तित्व निर्माण से इनका गहरा संबंध है।"[1]

II परसाई जी की साहित्यिक दृष्टि

परसाई के जीवन और साहित्य की दृष्टि बनने और उसके विकास में जिन व्यैक्तिक घटनाओं की अहम् भूमिका रही हैं, उनमें टिमरनी में प्लेग फैलने के दौरान उनकी माँ की मृत्यु हैं जिसने भगवान पर से उनके विश्वास को हिला दिया।वे लिखते हैं कि किशोरावस्था तक भगवान से सरोकार रहा था। फिर हमारी 'वैवलैंथ' ही गडबड़ हो गई। जगदीश (ईश्वर) ने पहले माँ को मारा, फिर पिता को बीमार किया। पहली तनख्वाह मिलते ही पिता चल बसे।[2] परसाई जी की अनुभूत पीड़ा और क्षोभ रचना में उतर आया। ज्ञान रंजन से अपने साक्षात्कार में परसाई जी स्वयं स्वीकार करते है कि "किशोरावस्था में भोगे व्यक्तिगत दुःखों और उनकी स्मृतियों से वे आक्रांत थे।"[3] परसाई जी के व्यक्तित्व और साहित्य निर्माण में उनकी यथार्थ चेतना के योग की उपस्थिति आरम्भ से ही रही।

III परसाई जी के साहित्य में यथार्थवादी चेतना

जीवन के यथार्थ में उलझे परेशान परसाई के बारे में कांतिकुमार जैन भी कहते है– 'परसाई का सन् 1939 में भगवान जी पर से विश्वास खंडित हुआ, 1940 में अमीरों पर से।[4] जीवन के छोटे बड़े अनुभव व्यक्ति की सोच और समझ को छांटते–तराशते हैं, प्रभावित करते हैं। मैट्रिक में टिमरनी में फुटबाल टीम में जिस तरह का व्यवहार परसाई जी ने झेला, उसका गहरा असर परसाई जी की चेतना पर पड़ा वे कहते हैं "इस व्यवस्था में चोर कोई भी हो, इल्जाम गरीब पर ही आता है।"[5] इस घटना के अपने ऊपर प्रभाव के संदर्भ में वे कहते हैं– "आगे मेरी जो दृष्टि बनी, वह शायद इस घटना से ही बनना शुरू हुई।"[6] इन सबके बीच परसाई ताकू खंडवा और फिर जबलपुर गये। यहीं से परसाई के लेखक बनने का सफर आरम्भ हुआ। यहाँ वे रामेश्वर गुरू, भवानी प्रसाद तिवारी, रामानुजलाल श्रीवास्तव जैसे समाजवादियों के सम्पर्क में आये और समाजवाद का पहला पाठ पढ़ा। फिर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से सम्पर्क हुआ और मार्क्सवादी दर्शन और साहित्य से परसाई का सम्पर्क हुआ।[7] देशकाल के संदर्भ में यदि हम परसाई के भीतर पल–बढ़ रहे सचेत और जाग्रत रचनाकार पर दृष्टि डालें तो पाऐंगे कि उस समय का देशकाल परिवेश संक्रमण के काल से गुजर रहा था। सन् 1948–49 में जब परसाई ने लिखना शुरू किया तब देश एक ओर स्वतंत्रता के जश्न में मग्न था वहीं धीरे–धीरे सत्ता, व्यवस्था और तंत्र के खेलों में आम आदमी मोह भंग की स्थिति में खड़ा था। परसाई कहते है "इतना झूठ, फरेब, छल पहले कभी नहीं देखा था। दगाबाजी संस्कृति हो गई थी। श्रद्धा सब कहीं

से टूट गयी।"[8] तत्कालीन परिस्थितियों में स्वतंत्रता की आकांक्षा और उसके बाद के मोहभंग में परसाई की यथार्थ चेतना और रचनाकार ने आकार लिया। पाँचवे–'छठे दशक की राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय घटनाएँ, परिवेश परसाई की दृष्टि का विकास कर रहे थे। इन सबके बीच विशद् अध्ययन और आसपास के सम्पर्क से परसाई जी का मार्क्सवाद के प्रति जो झुकाव उभरा तो वह सन् 1960 तक आते–आते पुख्ता हो गया। परसाई कहते हैं– "जब मैं जीवन का विश्लेषण करता हूँ तब सवाल उठता है कि मैं किस तरह जीवन की व्याख्या करता हूँ। ..... यहीं से प्रतिबद्ध लेखन का विवादास्पद प्रश्न खड़ा हो जाता है। प्रतिबद्धता एक गहरी चीज हैं, जो इस बात से तय होती है कि समाज में जो द्वंन्द्व है, उसमें लेखक किस तरफ खड़ा है– पीड़ितों के साथ या पीड़कों के साथ।[9] विश्वनाथ त्रिपाठी कहते हैं– परसाई मार्क्सवाद को स्वीकार करने वाले रचनाकार हैं, प्रवाह व विवेक, इस विषयक अध्ययन उनका विशद् अवश्य है, पर उसकी मूल पूंजी उनका जीवन संघर्ष है।[10] जीवन के गाढ़े अनुभव, पत्रकारिता की खुली नजर और विशद् अध्ययन से विकसित विश्वबोध एवं विचारधारा से मिली चेतना ये सब मिलकर परसाई की जीवनदृष्टि का निर्माण करते हैं। ईमानदारी इनकी जीवनदृष्टि का अभिन्न अंग है। वे किसी भी स्थिति में सत्य से समझौता नहीं करते है। न जीवन में और न साहित्य में। परसाई के जीवन में ईमानदारी, प्रतिरोध और सुधार का काफी महत्व था। लेखकीय जीवन में इसकी स्पष्ट छाप थी। साफगोई इनकी शैली मात्र नहीं, इनके लेखन की आत्मा है। जो यथार्थ जिस रूप में इन्होंने पाया, उसे उसी रूप में ईमानदारी से साहित्य में प्रस्तुत कर दिया। किसी प्रकार की कोई बनावट नहीं, सजावट नहीं और न ही दुराव छिपाव। अच्छा–बुरा सब ये बेहद निस्संग होकर अपने साहित्य में शामिल करते हैं। सबसे खास बात ये कि इन सबके बीच ये पाठक के समक्ष किसी आदर्श या यूरोपिया का जाल भी नहीं बुनते। परसाई की अच्छे भविष्य में आस्था है, किन्तु इसके लिए वे यथार्थ को दांव पर लगाकर कल्पना में नहीं झुलाते। इनका आदर्श इनके साहित्य में उन यथार्थ पात्रों के माध्यम से सामने आता हैं, जो पूरी ताकत से यथार्थ के घात–प्रतिघातों का डटकर मुकाबला करते हैं। परसाई की भाषा में कहें तो यह बेहद करीं (यानी खरी) स्ट्रेट फॉरवर्डनेस है।

परसाई के अंतरंग माया राम सुरजन लिखते हैं कि "आचार्य रजनीश को देखकर उन्होंने 'टार्च बेचने वाला' की रचना की, शेष नारायण को हत्या के झूठे मुकदमें में फंसाने वाले एक तिलकधारी पुलिस इंस्पेक्टर ने उन्हें 'इंस्पेक्टर मातादीन चांद पर' लिखने के लिए प्रेरित किया, आला अफसर की बीबी को पुरस्कार मिलने पर उन्होंने 'खीर प्रतियोगिता' का सृजन किया। परसाई ने समाज में जहॉ–तहॉ बिखरी घटनाओं को यथार्थ का रूप दिया।"[11] मायाराम का यह बयान निश्चिततः इसका प्रमाण माना जा सकता है,कि परसाई यथार्थ के प्रति सचेत और प्रतिबद्ध रचनाकार थे, जो अपने पूरे समय को उसकी पूरी यथार्थता में साहित्य में उतारते हैं। इनकी दृष्टि ने इसके लिए कभी किसी कल्पना या अनुमान को संबल नहीं बनाया।

परसाई की जीवन दृष्टि सदैव साफ रही, इसीलिए साहित्यिक दृष्टि भी पैनी और स्पष्ट रही। ये लिखते हैं– "यह बीसवीं शताब्दी हैं– सेंचुरी ऑफ कॉमनमैन,जन साधारण के जीवन की शताब्दी है, यहाँ जनसाधारण के जीवन से हटा हुआ साहित्य तुम कहाँ खपाओगे? कुछ कॉमनमैन के बारे में लिखो मेरे भाई।"[12] असंख्य लोग है, मजदूर हैं, किसान हैं, गरीब हैं, जो परिवर्तन के लिए लड़ रहे है। मैं इनके साथ कलम लेकर पैदल चलने वाला हूँ।"[13] परसाई कहते हैं " मैं लिखता हूँ। कि एक तो मैं स्वयं मनुष्य को अपने समाज को और दुनिया को समझना चाहता हूँ। दूसरो, मैं इसलिए लिखना चाहता हूँ कि व्यक्ति और समाज आत्म साक्षात्कार और आत्मालोचना करें और अपनी कमजोरियों, बुराईयों, विसंगतियों, विवेकहीनता, न्यायहीनता त्याग कर जैसे वे हैं, उससे बेहतर बनें।"[14] परसाई मानते है कि साहित्य सामाजिक परिवर्तन के लिए 'केटेलिटिक एजेंट' होता है और कोई भी "सच्चा व्यंग–लेखक सामाजिक संघर्ष के संदर्भों से कटकर नहीं रह सकता। बिना सामाजिक संघर्ष में शामिल हुए व्यंग्य नहीं लिखा जा सकता, गैर जिम्मेदारी का मसखरापन किया जा सकता है।[15]

IV निष्कर्ष

परसाई जी केवल पर उपदेश ही नहीं देते, अपितु स्वयं भी रचनाओं में यथार्थ को ही स्थान देते है। इनके समस्त रचनाकर्म में पीड़ित, शोषितों के प्रति सहानुभूति व सहयोग ही अधिक मुखर हुआ है। जीवन की छोटी, बड़ी प्रत्येक घटना को आपने साहित्य में ढालकर समाज में परोसा है। इनके साहित्य की मूल चेतना यथार्थवादी रही है। यह यथार्थ चेतना इनके साहित्य का प्राण तत्व भी है, और समाज से सीधे सम्बंध का आधार भी।

संदर्भ सूची

[1] गर्दिश के दिन– हरिशंकर परसाई, आंखन देखी, पृ. 38

[2] परसाई रचनावली–खंड़–6, पृ. 265

[3] परसाई रचनावली–खंड़–6, पृ. 409

[4] तुम्हारा परसाई–पृ. 32

[5] क्या कहूँ आज जो ..... हम एक उम्र से वाकिफ हैं–पृ. 44

[6] क्या कहूँ आज जो ..... हम एक उम्र से वाकिफ हैं–पृ. 45

[7] 'युगसाक्षी हरिशंकर परसाई' सं. कमला प्रसाद– पृ. 90

[8] कैफियत, विकलांग श्रद्धा का दौर–हरिशंकर परसाई

[9] साक्षात्कार आंखन देखी सं. कमला प्रसाद पृ. 42

[10] भारतीय सां. के निर्माता हरिशंकर परसाई विश्वनाथ त्रिपाठी–पृ.23

[11] विषवमन धर्मी रचनाकार मायाराम सुरजन आंखन देखी–पृ. 80

[12] बेचारा कॉमन मैन–हरिशंकर परसाई, युगसाक्षी पृ. 44

[13] साक्षात्कार, ज्ञानरंजन, आंखन देखी, पृ. 50

[14] चकमक की चिंगारियाँ, चांद का मुँह टेढ़ा– मुक्तिबोध, पृ. 168

[15] आंखनदेखी–पृ. 58